International Journal of Applied Research 2016; 2(5): 151-153

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(5): 151-153
www.allresearchjournal.com
Received: 02-03-2016
Accepted: 03-04-2016

डॉ. एस. प्रीति
हिंदी विभाग, विज्ञान एवं मानविकी संकाय
एस. आर. एम यूनिवर्सिटी
कत्तान्कुलाथुर, इंडिया।

Correspondence
डॉ. एस. प्रीति
हिंदी विभाग, विज्ञान एवं मानविकी संकाय
एस. आर. एम यूनिवर्सिटी
कत्तान्कुलाथुर, इंडिया।

मोहन राकेश कृत "आधे-अधूरे" नाटक में पारिवारिक विघटन

डॉ. एस. प्रीति

सारांश
नाटककार मोहन राकेश ने 'आधे-अधूरे' नाटक में वर्तमान को अतीत के माध्यम से मुखरित करने का मोह छोड़कर वर्तमान से सीधा साक्षात्कार किया है। स्वतंत्रता के पश्चात् मध्यवर्ग में आर्थिक विषमताओं ने क्रमश: पारिवारिक बिखराव मानसिक तनाव और नैतिक पतन को बढ़ावा दिया है। 'आधे-अधूरे' में एक मध्यवर्गीय परिवार की स्थिति को लेकर कथा-वस्तु की सृष्टि की गयी है, पति-पत्नी के गृह कलह को आधार बनाकर नाटककार पत्नी की काम कुण्ठाओं तथा पति के आत्म विश्वास रहित एक बेरोजगार व्यक्तित्व का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए बताया है कि किस प्रकार ये कुण्ठाएँ पारिवारिक जीवन को क्लेशपूर्ण एवं असहनीय बना देती है। परिवार का प्रत्येक सदस्य परिवार से ऊब चुका है और घर में रहते हुए घुटन का अनुभव करता है।

मुख्य शब्द: जीवन-मूल्यों, महत्वकांक्षाये, अभावग्रसता, विघटन।

भूमिका
'आधे-अधूरे' नाटक में मोहन राकेश के द्वारा आज के मानव की तथाकथित आधुनिकता में घिर आये अधूरेपन, अनिश्चितता तथा एकरसता में मानव व्यक्तित्व की सम्पूर्णता खोजने का उपक्रम है। इसमें आज के मनुष्य की अनियंत्रित और अन्तहीन यंत्रणाओं के गर्भ में नारी-मुक्ति की भावना, वैवाहिक संबंधों की विडम्बना पुरुष के अधूरेपन तथा विघटनशील जीवन-मूल्यों का प्रकर्ष है। सम्पूर्ण नाटक घर और घर में रहने वाले लोगों के अधूरे पर ही कथा व्यंजित करता है। इसका कथ्य इस बात को रेखांकित करता है कि पति-पत्नी के बीच किसी ऐसे सामंजस्य, संतुलन अथवा समीकरण की कोई संभावना नहीं हो सकती, जिसमें ये परस्पर किरोधी पात्र साथ-साथ रह सकते हों। इस विडम्बनापूर्ण स्थिति की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि ये अलग भी नहीं हो सकते। वस्तुत: 'आधे-अधूरे' हमारे समाज के ऐसे तमाम लोगों की अभिशप्त जिन्दगी का प्रामाणिक दस्तावेज है, जिन्होंने जीवन की तमाम इच्छाओं, आकांक्षाओं और उपलब्धियों को भौतिक सुख-सुविधाओं से जोड़ लिया और इस मृग भरीचिका में फँसकर पारिवारिक संबंधों की सहज, प्राप्त आत्मीयता, उपमा, भावात्मक सुरक्षा तथा आत्मिक शक्ति को पूरी तरह से खो दिया।

नाटककार मोहन राकेश ने 'आधे-अधूरे' नाटक में वर्तमान को अतीत के माध्यम से मुखरित करने का मोह छोड़कर वर्तमान से सीधा साक्षात्कार किया है। स्वतंत्रता के पश्चात् मध्यवर्ग में आर्थिक विषमताओं ने क्रमश: पारिवारिक बिखराव मानसिक तनाव और नैतिक पतन को बढ़ावा दिया है। 'आधे-अधूरे' में एक मध्यवर्गीय परिवार की स्थिति को लेकर कथा-वस्तु की सृष्टि की गयी है, पति-पत्नी के गृह कलह को आधार बनाकर नाटककार पत्नी की काम कुण्ठाओं तथा पति के आत्म विश्वास रहित एक बेरोजगार व्यक्तित्व का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए बताया है कि किस प्रकार ये कुण्ठाएँ पारिवारिक जीवन को क्लेशपूर्ण एवं असहनीय बना देती है। परिवार का प्रत्येक सदस्य परिवार से ऊब चुका है और घर में रहते हुए घुटन का अनुभव करता है।

'आधे-अधूरे' की सावित्री का पति महेन्द्रनाथ की बेरोजगारी के कारण उसे नौकरी करना पड़ता है। सावित्री मध्यवर्गीय परिवार की नौकरी पेशा नारी है। नौकरी करते समय सावित्री को कई पुरुषों से मिल जुलकर रहना पड़ता है। हमेशा किसी नये व्यक्ति को घर लाया करती है। सावित्री को अपना घर-घुसरा पति हमेशा छेड़ता रहता है। फिर भी सावित्री को अपने बेटे की नौकरी और बेटी के सुख की चिंता है। अपने बेटे अशोक को नौकरी दिलवाने के लिए वह अपने बॉस सिंघानिया से अनैतिक संबंध भी रखती है। बेटे के पूछने से जवाब देती हैं कि-- "अगर कुछ खास लोगों के साथ संबंध बनाकर रखना चाहती हूँ तो अपने लिए नहीं तुम लोगों के लिए।"[1]

सावित्री अपने घरवालों के लिए दिन-रात मेहनत करती है, क्योंकि पति महेन्द्रनाथ बेकार एवं निट्ठला है। बेटा अशोक अब तक नौकरी नहीं प्राप्त कर सका। घर में दो बेटियाँ है। सावित्री अधिक समस्या को किसी भी तरह सुलझाना चाहती है। सावित्री समझती है कि घर का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व उसी पर है- इसलिए कि किसी और कुछ बन सके कि मेरे अकेली के ऊपर बहुत बोझ है, इस घर का जिसे कोई और भी ढोने वाला हो सके। अगर मैं कुछ खास लोगों के साथ संबंध बनाकर रखना चाहती हूँ, तो अपने लिए नहीं तुम लोगों के लिए। पर तुम लोग इससे छोटे होते हो तो मैं छोड़ दूँगी। कोशिश हाँ, इतना कहकर कि- "मैं अकेले दम इस घर की जिम्मेदारियाँ नहीं उठाती रह सकती और एक आदमी है जो घर का सारा पैसा डुबोकर सालों के हाथ पर हाथ धरे बैठा है। दूसरा अपनी कोशिश से कुछ करना तो दूर, मेरे सिर फोड़ने से भी किसी ठिकाने लगना अपमान समझता है। ऐसे में मुझसे भी निभा सकता, जब और किसी को यहाँ दर्द नहीं किसी चीज का तो अकेली मैं ही क्यों अपने को चीथती रहूँ कोई छोटा नहीं होगा।"[2] पति महेन्द्रनाथ में आत्म-विश्वास की कमी होने के कारण सावित्री को वह अधूरा लगता है। सावित्री अपनी टूटती-बिखरती जिन्दगी से ऊबकर पूर्ण पुरुष की तलाश में भटकती है। सावित्री की महत्वकांक्षाये और आर्थिक स्वावलंबन के कारण जो अहं उत्पन्न होता है, वही उसके दांपत्य जीवन के विघटन का कारण बन जाती है।

मध्यवर्गीय सुविधा भोग ने नारी को किस गर्हित स्थिति में डाल दिया है, यह सावित्री के चरित्र में देखा जा सकता है। वह कहती है कि वह घर की सबसे उत्तरदायित्व सदस्य है, किन्तु यथार्थ यह है कि अपने उत्तरदायित्व की आड़ में वह वासना का खेल खेलना चाहती है। अपना पति उसे इसलिए अधूरा लगता है कि उसे उसमें एक विशिष्ट मादा और एक विशिष्ट शाख्यित नहीं दिखाई देती। वह अपने लिए 'एक पूरा आदमी' चाहती है और इसलिए कई लोगों के संपर्क में आती है कि पूरे आदमी के सभी गुण उसे किसी भी एक व्यक्ति में उपलब्ध नहीं होते औऱ वह एक के बाद दूसरे पुरुष को बदलती चली जाती है। जुनेजा सावित्री के इस सुविधा भोग पर कटाक्ष करते हुए कहता भी है- "जो जो बातें तुमने कही हैं अभी वे गलत नहीं है, अपने में। लेकिन बाईस साल साथ जीकर जानी हुई बातें वे नहीं है। आज से बीस साल पहले भी एक बार लगभग ऐसी ही बातें मैं तुम्हारे मुँह से सुन चुका हूँ.... तुम्हें याद है? ....उस दिन पहली बार मैंने तुम्हें इस तरह दुलते देखा था। तुमने कहा था कि वह (महेन्द्र) बहुत लिजलिजा और चिपचिपा सा आदमी है। पर उसे ऐसा बनाने वालों में नाम तब दूसरों के थे.... पर जुनेजा का नाम क्यों नहीं था, कह दूँ न यह भी?....असल बात इतनी ही कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता, तुम्हारी जिन्दगी में तो साल दो साल बाद तुम यही महसूस करती थी कि तुमने एक गलत आदमी से शादी कर ली। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना, वह उतना कुछ कभी किसी एक जगह न मिल पाता; इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बैचेन बनी रहती।"[3] मतलब यह कि इस सुविधा भोग के पीछे वह अपनी अस्मिता तक खो बैठी और पूर्ण पुरुष की तलाश पर अंतत: उसे वहीं अधूरा महेन्द्रनाथ मिला और भी वह लंगड़ाते आते हुए टूटे व्यक्ति के रूप में। सुविधाभोगिनी नारी का इससे भयंकर परिणाम और क्या होता है।

सावित्री के माध्यम से ही नाटक में मध्यवर्गीय पुरुष की विभिन्न मानसिकताओं का उद्घाटन संभव हुआ है। चाहे वह महेन्द्रनाथ हो या सिंघानिया, जुनेजा हो या जगमोहन अथवा अशोक सभी पात्रों को मानसिकताओं को उद्घाटित करने का काम नाटककार ने सावित्री को ही दिया है। डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र 'आधे-अधूरे' के इन पुरुष पात्रों के विषय में लिखते है-- "इसमें पात्रों की अमृत मनोदशा की अभिव्यक्ति है। उन पात्रों की जो आज की परिस्थिति में विवश होकर जी रहे है, जो अभाव और कुण्ठाओं से अभिशप्त है। पात्रों की मन: स्थितियों और संवेदनाओं की टकराहट ही पात्रों की चारित्रिक विशेषता है। इनमें पात्रों का स्वयं का अन्तर्द्वंद्व ही उनकी जीवंतता है। सभी अपने पारिवारिक संबंधों से आशंक्ति और क्रोध व उत्तेजना की स्थिति में हैं। प्रत्येक अपने एक दूसरे से अजनबी और अपरिचय की स्थिति में जी रहा है। प्रत्येक अपने आप में अधूरा है, फिर भी एक दूसरे के अधूरेपन को सहन करने में असमर्थ है। सभी पात्र काल्पनिक पूरेपन की तलाश में प्रयत्नशील है और ऐसा करते हुए वे नाटक का दूसरों की जिन्दगी को अभिशप्त बना रहे है।"[4] वास्तव में ऐसा लगता है कि ये सभी पुरुष पात्र महेन्द्रनाथ के ही मुखौटे हैं जो भिन्न-भिन्न रूपों में सावित्री के सामने आते हैं और उसके निकट अधूरे प्रमाणित होते हैं।

महेन्द्रनाथ के आवारापन तथा अपने परिवार को चलाने में उसकी अक्षमता के कारण वह अपने ही घर में एक रबड़ के टुकड़े के समान अस्तित्वहीनता के शिकार होकर जीवन बिताने लगा है। नाटक के प्रारंभ में ही स्पष्ट हो जाता है कि अपव्यय के कारण महेन्द्रनाथ के परिवार की दयनीय स्थिति हुई है और महेन्द्रनाथ के निठल्लेपन के कारण ही सावित्री को नौकरी करनी पड़ रही है। आरामतलब, घरघुसरा और निठल्ला होने के कारण महेन्द्रनाथ को कहीं काम न मिल सका और वह बेकार रहकर पत्नी की कमाई की रोटियाँ तोड़ने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे बार-बार परिवार में अपमान की स्थिति का सामना करना पड़ा। अपनी इस चारित्रिक विशेषता को वह स्वयं इन शब्दों में व्यक्त करता है- "अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। इन सब की जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ, क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ, घरघुसरा हूँ। मेरी हड्डियों में जंग लगा है।"[5] महेन्द्रनाथ इस हीन ग्रंथि के कारण छटपटाता है और ऐसे अवसर ढूँढ़ता है जब अपनी टूटन को सावित्री के अपमान से संतुष्ट दे सके। इसका परिणाम यह हुआ कि सावित्री तो दूर बच्चे भी उसका निरादर करने लगे और वह अपने को रबड़ का ऐसा टुकड़ा मानने को विवश हो गया, जिसकी उपयोगिता केवल ठप्पा लगाने भर की है और जिसे पारिवारिक सदस्य बार-बार घिसकर अपनी प्रतिष्ठा को बचाते रहे है और यही कुण्ठाएँ अंतत: उसे घर छोड़ने को विवश कर देती है। किन्तु कब तक। सावित्री के शब्दों में "हर शुक्र सनीचर को यही सब होती है। यहाँ।"[6] और सचमुच वह दिल का दौरा पड़ने पर भी लड़खड़ाते हुए वापस लौट आता है। इस प्रकार महेन्द्रनाथ एक ऐसा व्यक्ति है, जिसे परिस्थितियों ने तोड़ डाला है और इसलिए वह नाटक में भी एक टूटे और थके-हारे व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सिंघानिया भी महेन्द्रनाथ का ही एक मुखौटा है। अपने आप से संतुष्ट फिर भी आशंक्ति रहनेवाला यह सिंघानिया नाटक में पुरुष दो की भूमिका में आया है। वह मध्यवर्गीय पुरुष की कामुकता का प्रतीक है। अपने पद का दुरुपयोग वह सावित्री जैसी नारियों के फँसाने के निमित करता है और जो नारियाँ उसके अधिनस्थ कार्य करती है उनके सतीत्व से खेलना उसकी प्रथम मनोवृत्ति है। उसकी हरकते इतनी भोंडी है कि उनसे उशकी बेहथाई का स्पष्ट पता चल जाता है, वह अपने पद और विदेश भ्रमण की धावा जमाकर स्त्रियों को फँसा देता और उनके पारिवारिक जीवन की मधुरता में जहर घोल देता है। सिंघानिया सावित्री को आश्वासन देता है कि अशोक की नौकरी लगवा देगा, किंतु यह आश्वासन इतने भोंडे तरीके से दिया जाता है, जिससे स्पष्ट हो जाता है, उसका बार-बार जांघ खुजलाना और सावित्री या बिन्नी की आँखों में ताकते रहना आधि ऐसे प्रमाण है जो उसकी कामुक मनोवृत्ति के परिचायक है। अशोक तो उसकी इन्ही हरकतों का प्रबल विरोध भी करता है। इस संदर्भ में निम्नलिखित संवाद....

"लड़का: मुझे नहीं चाहिए नौकरी। कम से कम उस आदमी के जरिए हरगिज नहीं।

बडी लड़की: क्यों उस आदमी को क्या है।"[7]

वह मध्यवर्ग की उस मानसिकता का प्रतिरूप है जो स्त्रियों के यौवन से खेलता है। वास्तव में जगमोहन मध्यवर्गीय उस सुविधाभोग का प्रतिरूप है, जिसे महेन्द्रनाथ नहीं पा सका और उसी का मुखौटा ओढ़कर जगमोहन उस सुविधा को भोगता है। जगमोहन प्रारंभ में सावित्री से प्रेम का ढोंग रचकर उसके यौवन से खेलता है। किन्तु कालान्तर में जब सावित्री घर की परिस्थितियों और स्वयं अपनी स्थितियों से विक्षुब्ध होकर महेन्द्रनाथ को छोड़ देने का निर्णय ले लेती है और बिन्नी से यह कहकर कि अगली बार उसे वह यहाँ नहीं दिखायी देगी, वह जगमोहन के साथ बाहर चली जाती है और वह उससे विवाह का प्रस्ताव करती है तो वह स्पष्ट रूप से टाल जाता है।

जगमोहन उसके सामने बदली हुई परिस्थितियों.... अपने बसे हुए घर बाल बच्चों का ध्यान करते हुए, सामाजिक अप्रतिष्ठा और सावित्री की अनाकर्षक ढलती उम्र को देखकर वाक् कुशलता से उससे अपना दामन छुड़ा लेता है। प्रकरान्तर जुनेजा भी महेन्द्रनाथ का ही मुखौटा है और जुनेजा के रूप में उपस्थित होता है। वह मध्यवर्ग की स्वार्थी, मक्कारी और धूर्तता की मनोवृत्ति का प्रतिरूप है। अंतत: यही कहा जा सकता है कि नाटक में पुरुष एक (महेन्द्रनाथ), पुरुष दो (सिंघानिया), पुरुष तीन (जगमोहन) ये सब एक ही व्यक्ति के अलग-अलग मुखौटे है और यह व्यक्ति मध्यवर्गीय विसंगतियों में छटपटा रहा एक अदना सा व्यक्ति जिसकी अतृप्त रहने में ही है। आर्थिक दबावों, घुटन और कुण्ठाओं में पिस रहा यह व्यक्ति ही भिन्न-भिन्न नामों से, भिन्न-भिन्न रूपों में इस नाटक में आया है, जिसकी पहचान केवल इतनी ही है कि वह अनिश्चित है और सड़क पर हमसे कभी भी टकरा सकता है।

इसी प्रकार महेन्द्रनाथ और सावित्री की बड़ी लड़की बिन्नी विघटनशील परिवार की एक समस्या है, जिसने विघटन को प्रत्यक्ष रूप में झेला है। वह पारिवारिक यंत्रणा की शिकार है, क्योंकि इस परिवार में उसे आवारेपन की ही शिक्षा-दीक्षा मिली है। यहाँ अपनी माँ सावित्री की चरित्रहीनता के दुष्प्रभाव के कारण बिन्नी का भी चरित्र बिगड़ जाता है, बिखराव और आवारेपन उसके स्वभाव के अभिन्न अंग बन जाते हैं। बिन्नी का बिखराव भरा व्यक्तित्व अपनी माँ से इन शब्दों में व्यक्त करती है- "....और चीज है वह इस घर की जिसे लेकर बार-बार मुझे हीन किया जाता है। (लगभग टूटते स्वर में) तुम बता सकती हो ममा, कि क्या चीज है वह? और कहाँ है वह? इस घर की खिड़कियों दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुम में, डैडी में? किन्नी में? अशोक में? कहाँ छिपी है वह मनहूस चीज जो वह (मनोज) कहता है कि मैं इस घर से अपने अंदर लेकर गयी हूँ? (स्त्री की दोनों बाँहें हाथों में लेकर) बताओ मम्मा, क्या है वह चीज? कहाँ पर है वह इस घर में?"[8] बिन्नी का यह बिखराव उसे तोड़कर रख देता है। वह मनोज से हृदय से प्यार करती है, मनोज भी ऐसा व्यक्ति नहीं जिससे बिन्नी की कोई शिकायत हो किन्तु फिर भी वह सुखी गृहणी नहीं बन पाती। वास्तव में अपनी माँ के आवारापन के कारण ही उसे मनोज से नहीं जुड़ने देता। वह बार-बार सावित्री से पूछने आती है कि वह कौन सी मनहूज चीज है, जो वह इस घर में लेकर गयी है और जिसे लेकर मनोज उसे हीन करता रहता है। उसका व्यक्तित्व भी बिखराव से भर गया है और बिखराव भरे इस अभिशप्त जीवन को बिताने में विवश है। सावित्री के अलावा बिन्नी भी अपने घर की अभावग्रसता एवं साधनहीनता से ऊबकर सही वक्त पर उस पिंजड़े से मुक्त होने की कामना रखती है, मनोज जैसे हमदर्दी द्वार को पाकर बिन्नी स्वयं को मुक्त कर देती है, किन्तु उसकी माँ के समान बिन्नी में भी पूर्णता तलाश और असीमित महत्वकांक्षाओं के पीछे दौड़ने की प्रवृत्ति से सदा के लिए मुक्त नहीं हो पाने की वजह से फिर उसी बिन्दु तक आ जाती है जहाँ से उसकी यात्रा शुरू हुई है।

इसी प्रकार छोटी बेटी बिन्नी घर के कटु वातावरण में इतनी कसैली बन गयी है कि हर क्षण, हर पल, हर शब्द में वह तीखे प्रहार से ही अपना मन का गुबार निकालती रहती है। वह विद्रोही अशिष्ट एवं अश्लील किताबों में रूचि रखती है। साधारण-सी बात पर भी बिफर उठती है। इसी प्रकार अशोक सावित्री और महेन्द्रनाथ का बेटा अपने बाप जैसा जिन्दगी भर कुछ काम नहीं करना चाहता और उसकी दिलचस्पी केवल तस्वीरें काटने तथा दिन भर ऊँघने में और इधर-उधर घूमने में है।

इस प्रकार 'आधे-अधूरे' वर्तमान युगीन मध्यवर्गीय विसंगतियों का एक ऐसा प्रमाणिक दस्तावेज है, जिसमें महानगरीय संत्रास बोध, उसमें व्याप्त आर्थिक दबाव की छटपटाहट और तज्जन्य तनावों को यथातय रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जीवन में चुनाव बहुत कम है। हमें जिनके साथ रहना है, उनके ही साथ हम अच्छी तरह रहने का प्रयत्न करें। सब चीजें किसी को भी एक जगह अथवा किसी एक व्यक्ति से प्राप्त नहीं हो सकती। प्रत्येक व्यक्ति में कोई-न-कोई अभाव रहता ही है। यहाँ हर व्यक्ति अपूर्ण है और सम्पूर्णता की खोज में भटक रहा है, लेकिन उस सम्पूर्णता को और साथ ही उस आत्मीयता को पाना सभी के लिए मुश्किल है; क्योंकि बहुत पहले कहा गया है कि सम्पूर्णता कभी प्राप्त नहीं होती। अतएव व्यवहार कुशलता एवं साहिष्णुता के सहारे स्थिति को अपने अनुकूल बनाने तथा अपने-आपको स्थिति के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए नहीं तो विवशता और अधूरापन ही शेष रह जायेगा।

संदर्भ सूची

1. मोहन राकेश - आधे अधूरे -- पृ.सं. 53
2. मोहन राकेश - आधे अधूरे -- पृ.सं. 54
3. मोहन राकेश -आधे अधूरे - पृ.सं. 88-89
4. दशरथ ओझा (सं)-समकालीन हिन्दी नाटक -पृ.सं. 84
5. मोहन राकेश -आधे अधूरे - पृ.सं. 36
6. मोहन राकेश - आधे अधूरे - पृ.सं. 39
7. मोहन राकेश -आधे अधूरे - पृ.सं. 39
8. मोहन राकेश -आधे अधूरे - पृ.सं.